श्रील प्रभुपाद
लीलामृत

(प्रथम भाग)

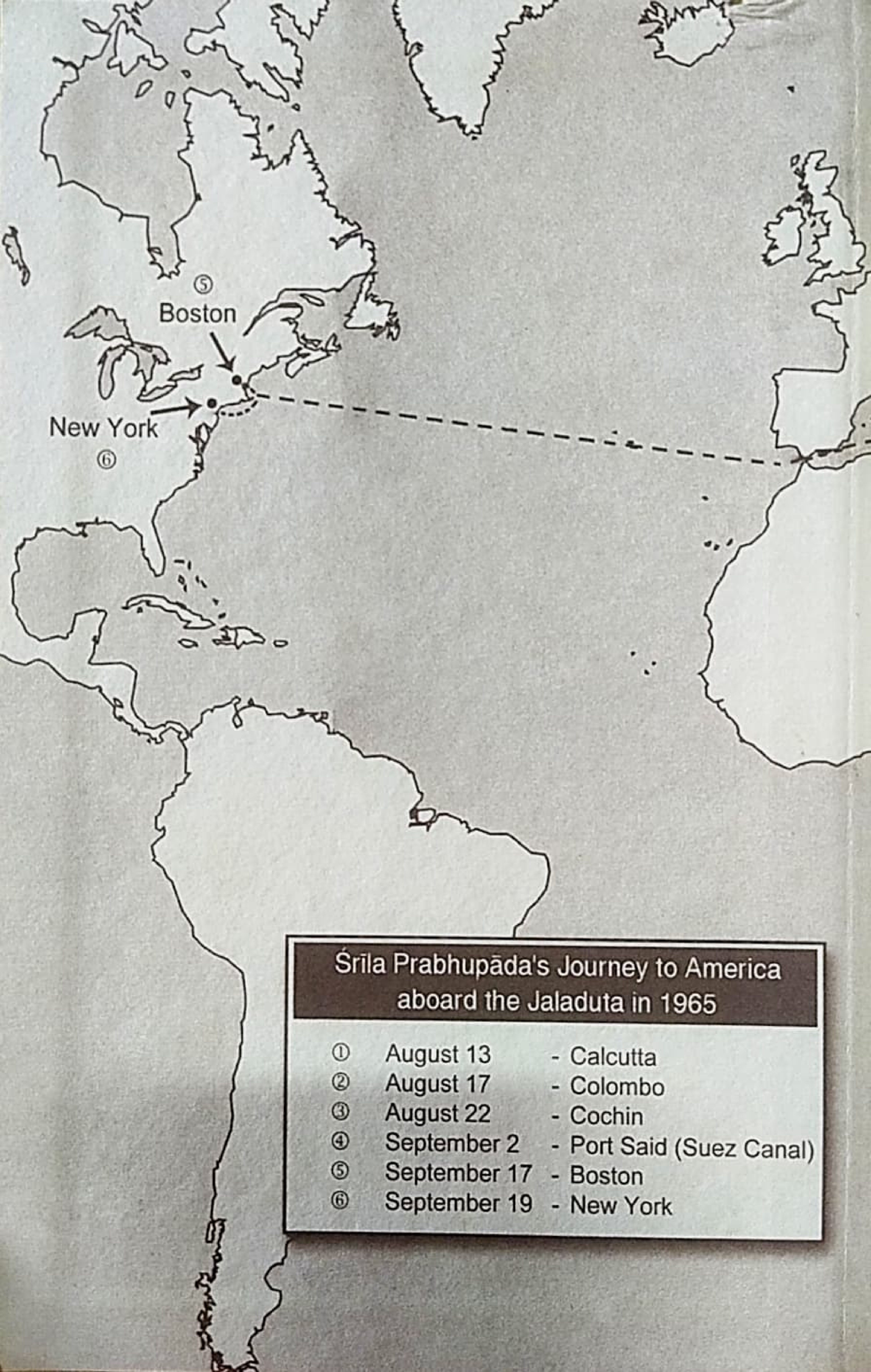
⑤
Boston
New York
⑥
Śrīla Prabhupāda's Journey to America
aboard the Jaladuta in 1965
① August 13 - Calcutta
② August 17 - Colombo
③ August 22 - Cochin
④ September 2 - Port Said (Suez Canal)
⑤ September 17 - Boston
⑥ September 19 - New York

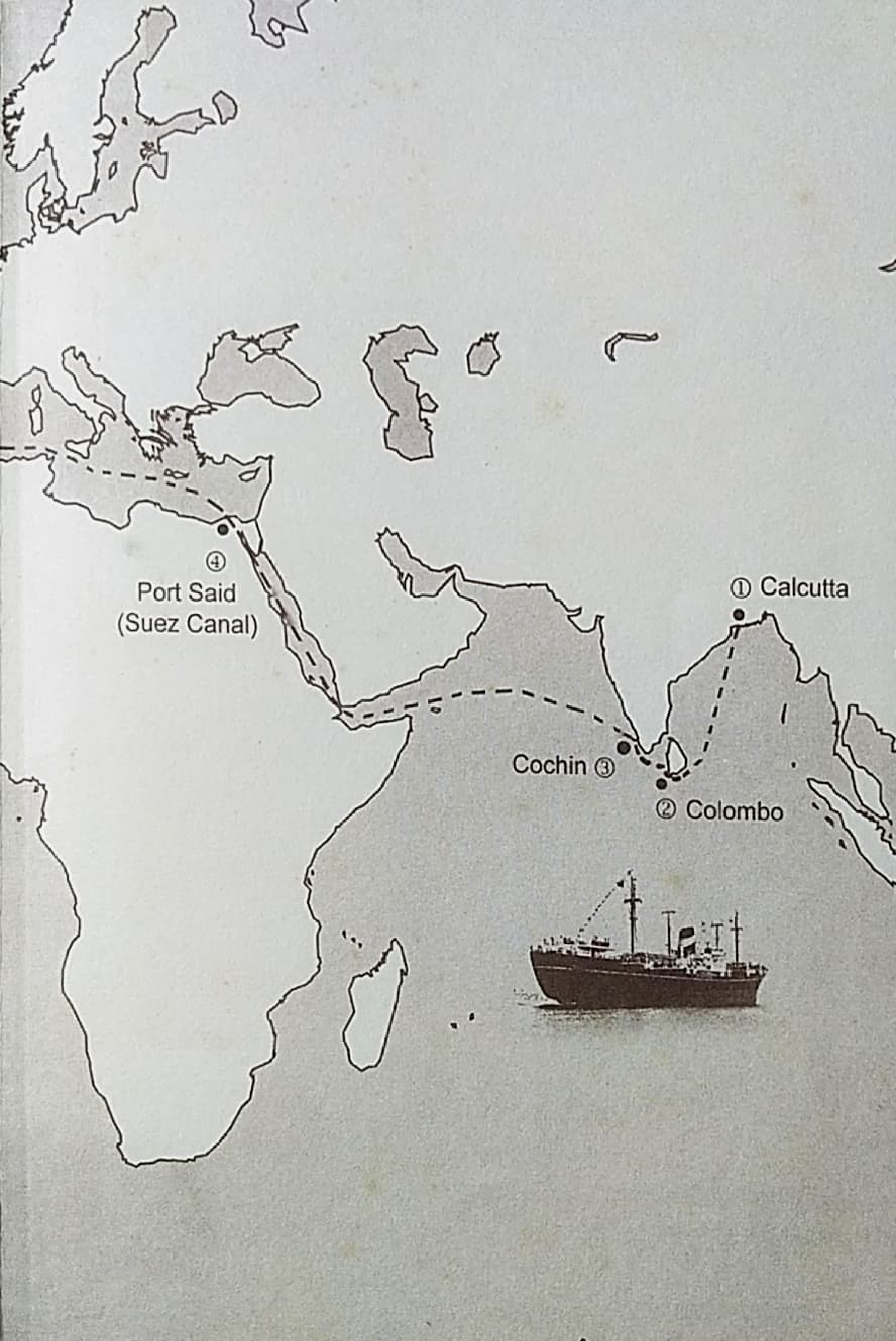
④
Port Said
(Suez Canal)
① Calcutta
Cochin ③
② Colombo

श्रील प्रभुपाद लीलामृत

कलिकालेर धर्म—कृष्णनाम सङ्कीर्तन।
कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन॥

हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करना ही इस कलियुग की आधारभूत धार्मिक विधि है। जब तक कृष्ण से शक्ति न मिले, तब तक कोई संकीर्तन-आन्दोलन का प्रचार नहीं कर सकता।

—चैतन्य-चरितामृत

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवतम् (१८ भागों में)
श्रीचैतन्य-चरितामृत (९ भागों में)
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण
भक्तिरसामृतसिन्धु
भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
श्रीउपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा
भागवत का प्रकाश
आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान
कृष्णभावनामृत : सर्वोत्तम योगपद्धति
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ
राजविद्या - ज्ञान का राजा
जीवन का स्रोत जीवन
जन्म-मृत्यु से परे
कर्मयोग
रसराज श्रीकृष्ण
प्रह्लाद महाराज के दिव्य उपदेश
कृष्ण की ओर
कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
कृष्णभावनामृत - एक अनुपम उपहार
पुनरागमन - पुनर्जन्म का विज्ञान
योगपथ - आधुनिक युग के लिए योग
योग की पूर्णता
नारद भक्ति-सूत्र
गीतासार
गीतार गान (बंगला)
भगवद्दर्शन पत्रिका (संस्थापक)

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई ४०० ०४९.

ये पुस्तकें हरे कृष्ण केन्द्रों पर भी उपलब्ध हैं। कृपया अपने निकटस्थ केन्द्र से सम्पर्क करें।

॥ श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्रील प्रभुपाद लीलामृत

भाग १

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

का जीवन चरित्र

सत्स्वरूप दास गोस्वामी

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कोन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम
जुहू, मुंबई ४०० ०४९

ई-मेल : admin@indiabbt.com
वेब : www.indiabbt.com

Śrīla Prabhupāda Līlāmṛta (Volume 1) (Hindi)

1st printing : 2,000 copies
2nd printing, December 2010 : 5,000 copies
3rd printing, June 2017 : 5,000 copies

© १९८० भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी अंश को पुनरुत्पादित, प्रतिलिपित नहीं किया जा सकता। किसी प्राप्य प्रणाली में संग्रहित नहीं किया जा सकता अथवा अन्य किसी भी प्रकार से चाहे इलेक्ट्रोनिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकार्डिंग से संचित नहीं किया जा सकता। इस शर्त का भंग करने वाले पर उचित कानूनी कार्यवाही की जाएगी।

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई द्वारा भारत में मुद्रित

SJ1K

विषय-सूची

आमुख
आह्वान

प्रकरण एक १
बचपन

प्रकरण दो २१
कालेज, विवाह और गाँधीजी का आन्दोलन

प्रकरण तीन ३९
"एक बहुत अच्छे साधु-स्वभाव वाले पुरुष"

प्रकरण चार ६३
"मैं आपकी सेवा कैसे करूँगा?"

प्रकरण पाँच १०१
युद्ध

प्रकरण छह १३१
एक अज्ञात मित्र

प्रकरण सात १५९
झाँसी : भक्तों का संघ

प्रकरण आठ १८५
नई दिल्ली—"वीरान में अकेले रोदन"

प्रकरण नौ २१३
वृन्दावन का एक निवासी

प्रकरण दस २५१
"आवश्यकता की यह महत्त्वपूर्ण घड़ी"

प्रकरण ग्यारह २८१
स्वप्न साकार हुआ

प्रकरण बारह ३१३
अमेरिका की यात्रा

प्रकरण तेरह ३२३
बटलर, पेन्सिलवानिया : प्रथम परीक्षण की भूमि

प्रकरण चौदह ३३७
एकाकी संघर्ष

प्रकरण पंद्रह ३५५
"आपकी सहायता करना सम्भव नहीं होगा"

प्रकरण सोलह ३६९
धर्मोपदेश के लिए स्वतंत्र

प्रकरण सत्रह ३८७
बोवरी पर

प्रकरण अठारह ४३१
कार्यारम्भ

प्रकरण उन्नीस ४७५

बीजारोपण

प्रकरण बीस ५२७

सदा के लिए उच्च पद पर बने रहो

प्रकरण इक्कीस ५७७

लोअर ईस्ट साइड के आगे

प्रकरण बाईस ६१७

"स्वामी हिप्पियों को आमंत्रित करते हैं"

प्रकरण तेईस ६७३

श्रीमान् प्राइस का मामला

प्रकरण चौबीस ६८७

नई जगन्नाथ पुरी

प्रकरण पचीस ७४९

"हमारे गुरु महाराज ने अपना कार्य पूरा नहीं किया है"

प्रकरण छब्बीस ७८५

स्वामीजी का प्रस्थान

प्रकरण सत्ताईस ८०७

भारत में वापसी—भाग १

प्रकरण अट्ठाईस ८३१

भारत में वापसी—भाग २

प्रकरण उनतीस ८५५

असीम अवसर, सीमित समय

प्रकरण तीस ८९३
लंदन : स्वप्न साकार हुआ

प्रकरण इकतीस ९४१
इस्कान के विरुद्ध धमकी

प्रकरण बत्तीस ९८५
भारत : नाचते सफेद हाथी

प्रकरण तैंतीस १०१९
"बहुत कार्य करना शेष है"

प्रकरण चौंतीस १०७१
जेट-युगीन परिव्राजकाचार्य

प्रकरण पैंतीस ११०७
"संसार का यह सुदूर कोना"

प्रकरण छत्तीस ११३३
नगर-नगर और गाँव-गाँव में

परिशिष्ट..११५५
कृष्ण के चरणकमलों की वंदना ११५५
मारकिने भागवत-धर्म ११५९
श्रील प्रभुपाद का भारत में (१९३६-१९६५) लेखन-कार्य ११६३
लेखक-परिचय..११६८

आमुख

चौदह नवम्बर सन् १९७७ ई. में श्रील ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के इस भौतिक जगत से तिरोधान के पश्चात् उनके अनेक शिष्यों ने श्रील प्रभुपाद के प्रामाणिक जीवन-चरित की आवश्यकता का अनुभव किया। ऐसी कृति के सृजन की व्यवस्था का उत्तरदायित्व अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की जी. बी. सी. पर था; अत: सन् १९७८ ई. संघ की वार्षिक बैठक में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि श्रील प्रभुपाद का जीवन चरित्र लिखा जाये और इसके लेखन का भार मुझे सौंपा जाये।

वैष्णव परम्परा के अनुसार यदि कोई आध्यात्मिक साहित्य के लेखन की आकांक्षा करता है, तो उसे इस महान् कार्य की अनुमति अपने आध्यात्मिक गुरु और भगवान् कृष्ण से प्राप्त करनी होगी। इस परम्परा के पालन का एक श्रेष्ठ उदाहरण है कृष्णदास कविराज गोस्वामी, जो भगवान् चैतन्य महाप्रभु की प्रामाणिक जीवनी, *श्रीचैतन्य-चरितामृत,* के रचयिता हैं। जैसाकि उन्होंने स्पष्ट किया है :

> वृन्दावन में ऐसे अनेक महान् भक्त थे, जो सबके सब भगवान् चैतन्य की अन्तिम लीलाओं के बारे में श्रवण करना चाहते थे।
>
> इन सभी भक्तों ने कृपा करके श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं को लिपिबद्ध करने का आदेश मुझे दिया। उनके आदेश-मात्र से, यद्यपि मैं निर्लज्ज हूँ, मैंने यह ग्रन्थ *चैतन्य-चरितामृत* लिखने का प्रयास किया है।
>
> वैष्णवों का आदेश पाकर, किन्तु अपने हृदय में चिन्तातुर होकर मैं श्रीविग्रह की अनुमति पाने हेतु वृन्दावन में श्री मदनमोहन मन्दिर गया।

इस आध्यात्मिक प्रक्रिया का अतिरिक्त वर्णन कृष्णकृपामूर्ति श्रील प्रभुपाद ने *चैतन्य-चरितामृत* पर अपने भाष्य में निम्नलिखित शब्दों में किया है :

भगवान् की दिव्य लीलाओं का वर्णन करना एक साधारण कार्य नहीं है। जब तक कोई लेखक उच्च अधिकारियों अथवा उन्नत भक्तों द्वारा शक्तिप्रदत्त नहीं होता, तब तक वह दिव्य साहित्य लिखने में सक्षम नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसे साहित्य का शंकातीत होना अत्यावश्यक है; दूसरे शब्दों में, उसमें बद्ध आत्माओं के सभी दोषों का अभाव होना

अनिवार्य है। ये दोष हैं : त्रुटियाँ, संभ्रांतिया, धोखेबाजी और अपूर्ण इन्द्रिय अनुभूति। कृष्ण की वाणी तथा गुरु-शिष्य-परम्परा, जो कृष्ण के आदेशों का पालन करती है, वस्तुतः प्राधिकृत है...

सर्वप्रथम, कड़े नियमों और सिद्धान्तों का पालन करके तथा प्रतिदिन १६ माला जप करके लेखक का शुद्ध भक्त होना आवश्यक है। जब वह स्वयं को वैष्णव पद पर वस्तुतः स्थित समझता है, तब उसे अपने आध्यात्मिक गुरु से अनुमति लेनी चाहिए और उस अनुमति की अपने हृदय में स्थित कृष्ण से पुष्टि होनी चाहिए।

अभिप्राय यह है कि *श्रील प्रभुपाद-लीलामृत* को एक प्रामाणिक जीवन-चरित्र कहे जाने का अर्थ यह नहीं है कि यह एक औपचारिक संस्था द्वारा प्राधिकृत चाटुकारितापूर्ण शब्द-चित्र है, किन्तु यह कि यह एक ऐसे लेखक द्वारा प्रस्तुत प्रामाणिक साहित्य है, जो गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत, कृष्ण और अपने गुरु की सेवा में रत है। अतः *श्रील प्रभुपाद-लीलामृत* किसी भौतिक अथवा कल्पित दृष्टिकोण से नहीं लिखा गया है। भगवान् के किसी शुद्ध भक्त के जीवन का महत्त्व और अर्थ सामान्य जीवनी-लेखकों द्वारा नहीं समझा जा सकता है; यदि ऐसे लोगों को श्रील प्रभुपाद के जीवन का यथार्थ अध्ययन करना पड़ता, तो वे इसके गूढ़ अर्थों से वंचित रह जाते और यदि वे उदारता-वश श्रील प्रभुपाद की प्रशंसा करने का प्रयास करते, तो यह जान पाना उनकी सूझ-बूझ से बाहर होता कि ऐसा किस प्रकार किया जाये। किन्तु, क्योंकि *श्रील प्रभुपाद-लीलामृत* आध्यात्मिक प्रक्रिया द्वारा अधिकृत है, इसलिए यह सतर्क पाठक के समक्ष श्रील प्रभुपाद का एक सुस्पष्ट चित्र प्रस्तुत कर सकता है।

श्रील प्रभुपाद-लीलामृत की प्रामाणिकता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है : वह सावधानीपूर्वक शोधित विषय-सामग्री की विशाल मात्रा, जो मैं इस ग्रंथ के प्रत्येक खंड में केन्द्रित करने में सक्षम हुआ हूँ। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रमुख भक्तों ने न केवल इस ग्रंथ की रचना करने की मुझे अनुमति दी है, प्रत्युत उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के विश्व-परिवार को श्रील प्रभुपाद के व्यक्तित्व और जीवन से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी एकत्रित करने में मेरी सहायता हेतु आमंत्रित भी किया है। प्रभुपाद के प्रकाशन-केन्द्र, *दि भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट* ने मुझे उनके पत्रों का संग्रह भी दिया है, जिसकी संख्या सात हजार से अधिक है। इसके अतिरिक्त, प्रभुपाद के बीसों शिष्यों ने उनकी संगति में व्यतीत किये अनेक क्षणों की अपनी डाइरियां और अपने स्मृति-लेख देकर मुझे भेंटवार्ताएँ देकर भी कृतार्थ किया है। उनके शिष्यों के अलावा हमने विभिन्न क्षेत्रों के ऐसे अनेक व्यक्तियों से भी भेंट वार्ताए ली हैं, जो पिछले कई वर्षों के दौरान उनसे मिले थे। परिणामस्वरूप, हमारे पास श्रील प्रभुपाद की एक बहुमूल्य संग्रहित शब्द-निधि तैयार हो गई है, जो हमें उनके

जीवन के विभिन्न स्तरों पर तथा विविध परिस्थितियों में उन्हें मिलने वाले लोगों से प्राप्त हुई है। ऐसे सभी व्यक्तियों की सूची, जो *श्रील प्रभुपाद-लीलामृत* के प्रकाशन में हमें सहयोग प्रदान कर रहे है, इस ग्रंथ के आभार-विभाग में दी गई है।

इस ग्रंथ के प्रामाणिक पक्ष के बावजूद और मेरे अनेक शुभचिंतकों के सहयोग के बावजूद, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हमारे आध्यात्मिक गुरु, कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का महिमागान करने के प्रयास में मैं उस क्षुद्र पक्षी के समान हूँ, जो सागर से अपनी चोंच में जल भरकर भूमि-स्थल पर ले जाता रहता है और उसे रिक्त करने का विफल प्रयास करता है। श्रील प्रभुपाद का जो शब्द-चित्र मैंने प्रस्तुत किया है, वह उनकी असीम कृपा की एक झलक मात्र है और वह भी गुरुकृपा एवं कृष्णकृपा के कारण ही सम्भव हो पाई है।

सत्स्वरूप दास गोस्वामी

आह्वान

कृष्णदास कविराज के अनुसार आह्वान में सम्मान-प्रदर्शन, उद्देश्य की परिभाषा और आशीर्वाद देने का समावेश है।

मैं सम्मानपूर्वक अपना प्रणाम अपने शाश्वत गुरु महाराज कृष्णकृपामूर्ति श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद को अर्पित करता हूँ, जिनकी सेवा करना मेरा जीवन और आत्मा है। यह उनकी प्रसन्नता के लिए ही है कि मैं 'श्रील प्रभुपाद लीलामृत' को भक्ति-स्वरूप अर्पित कर रहा हूँ। उन्होंने समस्त विश्व को कृष्णभावनामृत का वरदान दिया है, अत: वे सभी लोगों और प्राणियों के सर्वोत्तम मित्र हैं। वे सर्वशक्तिमान आचार्य हैं, जो भगवान् के शुद्ध प्रेम का दान दे रहे हैं और भगवान् चैतन्य के सन्देश को गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से दृढ़तापूर्वक प्रसारित कर रहे हैं। और किसी ने भी कृष्णभावनामृत का इतने विस्तार से प्रसार नहीं किया। मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे उन कठिनाइयों को पार करने की मुझे अनुमति दें, जो उनके जीवन-चरित को लिखने में पेश आ रही हैं और यह कि वे इस लेखन के परिणामों से प्रसन्न हों। मेरा विश्वास है कि उनकी शुभकामनाओं से यह कार्य सफल होगा और यदि वे प्रसन्न नहीं होते, तो मैं समझूंगा कि मैं कोई अच्छी चीज लिखने में असमर्थ हूँ।

अपने आध्यात्मिक गुरु महाराज के प्रति सम्मान प्रकट करके, मैं गुरु-शिष्य परम्परा के अन्य सभी आचार्यों—श्रील प्रभुपाद के गुरु भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर तथा उनके गुरु आदि, छह गोस्वामियों, भगवान् चैतन्य और स्वयं भगवान् कृष्ण—के प्रति सम्मान प्रदर्शित करता हूँ। श्रील प्रभुपाद के अनुग्रह से ही मैं मन्दिर में नतमस्तक हो सकता हूँ; गौर-निताई, कृष्ण-बलराम और राधा-श्यामसुन्दर के चरणकमलों पर साष्टांग प्रणाम कर सकता हूँ और उनकी कृपा तक पहुँच सकता हूँ।

'श्रील प्रभुपाद लीलामृत' का एक उद्देश्य श्रील प्रभुपाद के जीवन और उनकी शिक्षाओं को दिव्य परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है, न कि उन्हें एक साधारण व्यक्ति के रूप में चित्रित करना, जो प्राकृतिक गुणों में बंधा हो। श्रील प्रभुपाद दैवी-शक्ति प्रदत्त शुद्ध भक्त थे। परम ईश्वर द्वारा वे इस संसार में इसलिए भेजे गए थे कि वे सभी राष्ट्रों, जातियों, वर्गों और धर्मों के लोगों में कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करें और इस तरह हर एक को शुद्ध भक्त बनने और भगवान् के धाम लौटने का सुअवसर प्रदान करें।

इस कृति का एक दूसरा उद्देश्य समाज के नेताओं और प्रभावशाली सदस्यों को श्रील प्रभुपाद की ओर आकृष्ट करके उन्हें सराहना और उनसे प्रेम करना है। इस जीवन-चरित्र का निष्कपट होना, तथ्यों पर आधारित होना और दिव्य ज्ञान में सच्चा होना आवश्यक है और इसे पाठक को वशीभूत करके उसे प्रसन्न करना चाहिये। 'श्रील प्रभुपाद-लीलामृत' के लिए आवश्यक है कि वह पाठक को प्रबुद्ध करे, आनन्द दे और साथ ही श्रील प्रभुपाद की कृतियों की ओर उन्मुख करके जिज्ञासु बनाए। मेरा अन्तिम लक्ष्य यह है कि पाठक को आगे और प्रेरणा मिले, जिससे वह कृष्णकृपामूर्ति श्रील प्रभुपाद की सेवा में प्रवृत्त हो।

यद्यपि यह उचित है कि आह्वान लिखते समय पाठक को वरदान दिया जाए, किन्तु मैं पतित हूँ और कोई भी वरदान देने में अशक्त हूँ। किन्तु मैं विश्वास-पूर्वक पाठकों को आश्वस्त कर सकता हूँ कि श्रील प्रभुपाद के जीवन और उनकी शिक्षाओं का अध्ययन करके वे कृष्ण की कृपा को शीघ्र प्राप्त कर लेंगे, क्योंकि एक महान् भक्त की कृपा से ही कोई कृष्ण की कृपा प्राप्त कर सकता है। 'श्रील प्रभुपाद-लीलामृत' पढ़कर उन लोगों को जो उनके संसर्ग में रहे और जिन्होंने उनकी सेवा की, अपनी स्मृतियां ताजा करने का अवसर मिलेगा और इस प्रकार वे आनन्द प्राप्त करेंगे और प्रभुपाद के प्रति अपने आपको पुन: समर्पित करेंगे। जिन्हें प्रभुपाद को जानने का अवसर कभी नहीं मिला, वे भी धन्य हो जाएंगे, क्योंकि वैदिक शास्त्रों के अनुसार शुद्ध भक्ति का क्षणिक संसर्ग भी किसी के जीवन को पूर्ण बना सकता है। 'श्रील प्रभुपाद-लीलामृत' का अध्ययन श्रवण की दिव्य प्रक्रिया द्वारा प्रभुपाद के संसर्ग में आने के समान है। अतएव, यद्यपि मैं स्वयं अपने पाठकों को कोई आशीर्वाद नहीं दे सकता, किन्तु यह ग्रन्थ ऐसा कर सकता है, क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति को श्रील प्रभुपाद की ओर आकृष्ट करता है।

इस प्रकार इस कृति का आह्वान—सम्मान-प्रदर्शन, उद्देश्य-वर्णन और आशीर्वाद—करने के पश्चात् मैं पतित और मूक बना रहता हूँ और अपने गुरु महाराज के चरणकमलों पर याचना करते हुए उनकी कृपा की प्रतीक्षा करता रहता हूँ—जिस कृपा के बल पर ही यह दीन लेखक और भक्त अच्छी तरह बोल सकता है।

मेरे प्रिय श्रील प्रभुपाद, मेरे प्रिय भगवान् कृष्ण, यदि आप समझते हैं कि ठीक तरह से लिखने के लिए मुझ पर विश्वास किया जा सकता है, तो कृपा करके मुझे लिखने की अनुमति दीजिए। इस दिव्य साहित्य की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि कलियुग के मानव आध्यात्मिक अंधकार की दयनीय दशा में हैं, उन्हें शुद्ध भक्त की सेवा से प्राप्त होने वाले चैन का ज्ञान नहीं है। भगवान् के भक्त और श्रील प्रभुपाद के अनेक सच्चे अनुयायी इस ग्रन्थ के प्रत्येक भाग का उत्सुकता से स्वागत करते हैं। वे श्रील प्रभुपाद के

कार्यकलापों और उपदेशों के सम्बन्ध में अधिकाधिक सुनना चाहते हैं और वे उनका दक्षतापूर्वक प्रस्तुतीकरण देखना चाहते हैं, ताकि अन्य लोग भी गुरु और गौरांग की प्रेमपूर्ण समर्पित सेवा की ओर आकृष्ट होकर हमारा साथ दे सकें।

मेरे प्रिय श्रील प्रभुपाद, मैं जानता हूँ कि इस साहित्य का उत्पादन करने के लिए मुझे घोर परिश्रम करना पड़ेगा और मैं ऐसा करने का वचन देता हूँ, किन्तु मेरे प्रयत्न गढ़े हुए रिक्त शब्दों का जाला बुनने के समान होंगे, जब तक कि आप इन शब्दों में उपस्थित नहीं रहते और दिव्य शक्ति से उन्हें अनुप्राणित नहीं करते।

सत्स्वरूप दास गोस्वामी

प्रकरण एक

बचपन

हम सोते होते, और पिताजी आरती करते होते। घंटी की टन-टन सुनकर हम जग जाते और देखते कि वे कृष्ण को नमन कर रहे हैं।

—श्रील प्रभुपाद

जन्माष्टमी का दिन था, आज से कोई पाँच हजार वर्ष पहले भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार ग्रहण करने के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले वार्षिक उत्सव का दिन। कलकत्ता के निवासी, जिनमें अधिकतर बंगाली और अन्य भारतीय थे, किन्तु जिनमें कई मुसलमान और कुछ अंग्रेज भी थे, उत्सव मना रहे थे और भगवान् कृष्ण के मन्दिरों के दर्शनार्थ नगर की सड़कों पर इधर-उधर घूम रहे थे। आधी रात तक व्रत रखने वाले भक्त-वैष्णव हरे कृष्ण कीर्तन कर रहे थे और श्रीकृष्ण के जन्म और कार्य-कलापों के सम्बन्ध में *श्रीमद्भागवतम्* का पाठ सुन रहे थे। वे रातभर व्रत-उपवास, कीर्तन और पूजा-पाठ करते रहे।

दूसरे दिन (सितम्बर १, १८९६) कलकत्ता के उपनगर टालीगंज के एक छोटे मकान में एक बालक का जन्म हुआ। बालक का जन्म नन्दोत्सव के दिन हुआ था, जब कृष्ण के पिता नन्द महाराज ने कृष्ण-जन्म के उपलक्ष्य में उत्सव मनाया था, इसलिए बालक के चाचा ने उसको नन्दूलाल कहकर पुकारा। किन्तु उसके पिता, गौर मोहन दे और उसकी माता रजनी ने उसका नाम अभयचरण रखा, जिसका अर्थ है, "जो भगवान् कृष्ण के कमलवत् चरणों में शरण लेने के कारण निर्भय हो।" बंगाली परम्परा के अनुसार माँ बच्चे के जन्म के लिए अपने माँ-बाप के घर गई थी। अतएव अभयचरण का जन्म, अपने पिता के घर से कुछ मील दूर, आदि गंगा के तट पर मिट्टी की दीवारों से बने और खपरैल से छाए और कटहल वृक्ष के नीचे स्थित दो कमरों वाले एक छोटे-से मकान में हुआ। कुछ दिन बाद अभय अपने माँ-बाप के साथ अपने घर, १५१, हरीसन रोड आ गये।

एक ज्योतिषी ने बालक की जन्मकुंडली बनाई और परिवार के लोग उसके शुभ लक्षणों से बहुत प्रसन्न हुए। ज्योतिषी ने विशेष भविष्यवाणी की : यह बालक जब सत्तर वर्ष का होगा, तब यह समुद्र पार जायेगा, धर्म का महान् प्रचारक बनेगा और १०८ मन्दिरों की स्थापना करेगा।

• • •

अभयचरण दे ऐसे भारतवर्ष में पैदा हुए थे, जो विक्टोरियन साम्राज्यवाद से आक्रांत था। कलकत्ता भारत की राजधानी था, वायसराय अर्ल आफ एलगिन और किनकर्डाइन का मुख्यालय और अंग्रेज साम्राज्य का 'दूसरा नगर'। योरोपीय और भारतीय अलग-अलग रहते थे, यद्यपि कारोबार और शिक्षा में उनका मेल-जोल होता था। अँग्रेज अधिकतर मध्य कलकत्ता में रहते थे, जहाँ उनके अपने थियेटर थे, घुड़दौर के मैदान थे, क्रिकेट के मैदान थे और सुन्दर योरोपीय भवन थे। भारतीय ज्यादातर कलकत्ता के उत्तरी भाग में रहते थे। पुरुष धोती पहनते थे और स्त्रियाँ साड़ी। अंग्रेज राज के प्रति स्वामिभक्त रहते हुए, वे अपने परम्परागत धर्म और अपनी संस्कृति का अनुगमन करते थे।

अभय का घर, १५१, हरीसन रोड उत्तरी कलकत्ता के भारतीय खंड में था। अभय के पिता गौर मोहन दे सामान्य आय वाले एक कपड़े के व्यापारी थे और अभिजात सुवर्ण-वणिक सम्प्रदाय में जन्मे थे। किन्तु उनका सम्बन्ध सम्पन्न मल्लिक परिवार से था, जो सैकड़ों वर्षों से अंग्रेजों के साथ सोने और नमक का व्यापार करता आया था। मल्लिक मूलत: दे परिवार के सदस्य थे। इस गोत्र का सम्बन्ध प्राचीन ऋषि गौतम से था; किन्तु अंग्रेज-पूर्व मुगल-काल में एक मुसलमान शासक ने दे-परिवार की एक सम्पन्न और प्रभावशाली शाखा को मल्लिक (स्वामी) की उपाधि से सम्मानित कर दिया था। तत्पश्चात्, कई पीढ़ियों के बाद दे परिवार की एक कन्या का विवाह मल्लिक परिवार में हुआ, और तब से दोनों परिवार एक दूसरे के बहुत निकट बने रहे।

हरीसन रोड की दोनों ओर की सम्पत्तियों का पूरा खंड लोकनाथ मल्लिक का था, और इनमें एक तीन-मंजिले मकान के कुछ कमरों में गौर मोहन अपने परिवार के साथ रहते थे। उनके निवास के सामने सड़क के पार राधा-गोविन्द का एक मन्दिर था, जहाँ गत १५० वर्षों से मल्लिक लोग राधा-कृष्ण के श्रीविग्रहों की पूजा-अर्चना करते आये थे। मल्लिकों की कई दुकानों की आय से श्रीविग्रहों और उनकी पूजा-अर्चना करने वाले पुजारियों का खर्च चलता था। हर प्रात:काल जलपान के पूर्व मल्लिक परिवार के सदस्य राधा-गोविन्द के श्रीविग्रहों का दर्शन करने मन्दिर में जाते थे। वे एक बड़े थाल में भात, कचौरियाँ और सब्जियाँ रखकर श्रीविग्रहों को अर्पित करते और तब प्रसाद के रूप में

उनका वितरण सवेरे पास-पड़ोस से आने वाले दर्शनार्थियों में करते थे।

अभयचरण नित्यप्रति के दर्शनार्थियों में थे। साथ में उनकी माता होतीं, पिता होते या नौकर होता।

श्रील प्रभुपाद : *मैं सिद्धेश्वर मल्लिक के साथ ही एक बच्चा-गाड़ी में सवारी करता। वह मुझे मोती कहता और उसका उपनाम सुबिधि था। नौकर हम दोनों को साथ साथ चलाता। यदि किसी दिन मेरा यह मित्र मुझे न देखता, तो वह पागल हो उठता। वह बच्चा-गाड़ी में मेरे बिना सवारी न करता। हम एक क्षण के लिए भी अलग न होते।*

• • •

जब नौकर बच्चा-गाड़ी को साइकलों और भाड़े की घोड़ा-गाड़ियों से बचाता हुआ विस्तृत हरीसन रोड के बीचों बीच धकेलता, उस समय गाड़ी में बैठे दोनों बच्चे ऊपर के स्वच्छ निर्मल आकाश और आर-पार के ऊँचे वृक्षों पर दृष्टि गड़ाए रहते। सड़क पर चक्कर खाती बड़ी पहियों वाली घोड़ा-गाड़ियों के दृश्य और उनसे पैदा होने वाली आवाज दोनों बच्चों का मुग्ध ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेतीं। नौकर गाड़ी को राधा-कृष्ण मन्दिर के चारों ओर निर्मित लाल बलुए पत्थर में बने मेहराबदार फाटक की ओर ले चलता, और जब अभय और उनका मित्र अलंकृत धातु वाले मेहराब के नीचे से मन्दिर के आँगन में प्रविष्ट होते, तो वे अपने बहुत ऊपर दो प्रस्तर सिंहों को देखते, जो अपने दाहिने पंजे आगे को फैलाए हुए मन्दिर के आँगन के आह्वानकर्ता और संरक्षक की तरह स्थित थे।

आंगन के अन्दर का मार्ग वृत्ताकार था, और अंडाकार लॉन पर गैस की बत्तियोंवाले दीपस्तम्भ लगे थे। परिधान-युक्त एक युवती की प्रतिमा भी वहाँ खड़ी थी। तेज़ी से चहकते हुए गौरैये झाड़ियों और वृक्षों में फुदकते रहते या एक-एक करके जमीन में चोंच मारते हुए घास में इधर से उधर कूदते रहते। कबूतर समूह-गान में गूटर-गूं करते रहते, फिर कभी अचानक वे अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए ऊपर उड़ जाते और उसके बाद या तो किसी दूसरे ठिकाने पर जा बैठते या नीचे आंगन में उतर आते। सादी सूती साड़ियाँ और सफेद धोतियाँ पहने हुए, इधर-उधर आते-जाते बंगालियों से तरह-तरह की ध्वनियाँ उठ रही होतीं। कोई बच्चा-गाड़ी के पास तनिक रुककर काली चमकदार आँखों वाले स्वर्णिम चमड़ी वाले बच्चों को पुचकारता, किन्तु अधिकतर लोग तेजी से चलते हुए मन्दिर में प्रवेश कर जाते।

अन्दर के आंगन की ओर जाने वाले भारी, दुहरे किवाड़ खुले थे, और नौकर ने बच्चा-गाड़ी को एक फुट नीचे की सीढ़ी पर धीरे से उतारा और गैलरी से आगे बढ़कर उसे दूसरी सीढ़ी पर उतारा और फिर वह सूर्य के प्रकाश से चमचमाते मुख्य आंगन में

प्रविष्ट हुआ। वहाँ उन्होंने चार-फुट-स्तंभ पर आसीन गरुड़ की पत्थर की बनी एक प्रतिमा देखी। विष्णु के वाहक गरुड़, जो आधा मनुष्य और आधा पक्षी हैं, एक घुटने पर झुके थे, उनके हाथ प्रार्थना में जुड़े थे, उनकी चोंच बाज पक्षी की तरह मजबूत थी और पंख पीछे की ओर खिंचे थे। बच्चा-गाड़ी पत्थर से बने आँगन को बुहारते और धोते हुए दो नौकरों से आगे बढ़ी। अब आंगन के पार मन्दिर केवल कुछ कदम दूर रह गया था।

स्वयं मन्दिर-क्षेत्र, जो दर्शक-मंडप की तरह खुला था, ऊँचा चबूतरे जैसा था, जिसके ऊपर पन्द्रह फुट ऊँचे, मजबूत खंभों पर टिकी पत्थर की छत थी। दर्शक मंडप की बाईं ओर के सिरे पर उपासकों की भीड़ आसन पर विराजमान श्रीविग्रहों का दर्शन करती हुई खड़ी थी। नौकर बच्चा-गाड़ी को और निकट ले गया, उसने दोनों बच्चों को बाहर निकाला और हाथ पकड़कर आदरपूर्वक वह उन्हें अर्चाविग्रह के सम्मुख ले गया।

श्रील प्रभुपाद : *राधा-गोविन्द मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर राधा-गोविन्द की मूर्ति के सामने प्रार्थना करना मुझे स्मरण है। मैं घंटो मूर्ति को देखा करता। तिरछे नेत्रों वाली वह मूर्ति कितनी सुन्दर थी!*

अभी-अभी स्नान किये हुए तरोताजा और विभूषित राधा और गोविन्द अब महकते हुए फूलों वाले कलशों के बीच चाँदी के सिंहासन पर विराजमान थे। गोविन्द लगभग डेढ़ फुट लम्बे थे और राधारानी, जो उनकी बाईं ओर खड़ी थीं, कुछ छोटी थीं। दोनों स्वर्ण-निर्मित थे। राधा और गोविन्द दोनों एक ही सुन्दर टेढ़ी नृत्य-भंगिमा में थे, दाहिनी टाँग घुटने पर मुड़ी हुई और दाहिना पग बाएँ पग के आगे स्थित था। चमकदार रेशम की साड़ी में सजी राधारानी लालवर्ण की हथेली वाले दाहिने हाथ को आशीर्वचन की मुद्रा में ऊपर उठाए थीं और रेशमी कुर्ते और धोती में सजे कृष्ण सुनहरी बाँसुरी बजा रहे थे।

गोविन्द के चरणकमलों पर तुलसी की हरि पत्तियाँ पड़ी थीं और उन पर चन्दन का लेप लगा था। दोनों श्रीवरों के गलों से रात्रि में खिलने वाली मालती के फूलों की कितनी ही मालाएँ लटक रही थीं, जो लगभग उनके चरणकमलों तक पहुँचती थीं; तूरी-सरीखे पुष्प उनके दैवी शरीर को कोमलता से आच्छादित किये हुए थे। सोने, मोती और हीरे से बने उनके कण्ठमाल चमचमा रहे थे। राधारानी के बाजूबन्द सोने के थे और वे कृष्ण के साथ दोनों कंधों पर सुनहरे तारों से अलंकृत रेशम की चादरें ओढ़े थे। उनके हाथों और बालों में सुसज्जित पुष्प छोटे और कोमल थे और सिरों पर स्थित चाँदी के मुकुट रत्नों से जड़े थे। राधा और कृष्ण मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

सुन्दर वस्त्रों में सजे, रजत वितान के नीचे पुष्पों से आवृत, चाँदी के सिंहासन पर नृत्य की मुद्रा में विराजमान वे अभय को अत्यन्त आकर्षक लगे। हरीसन रोड और उसके इधर-उधर का जीवन विस्मृत हो गया। आँगन में पक्षी कलरव करते रहे, दर्शनार्थी आते और

जाते रहे, किन्तु अभय मौन खड़े रहे, वे परम ईश्वर श्रीकृष्ण और उनकी नित्य सहवासिनी राधारानी के सुन्दर रूपों के अवलोकन में भावविभोर थे।

तब भक्तों के मंत्रोच्चार और ढोलकों और करतालों के वादन के साथ कीर्तन आरम्भ हुआ। अभय और उनके मित्र देखते रहे; पुजारियों ने अगरबत्तियाँ अर्पित कीं, उनकी धूम-तरंगें हवा में उठती रहीं। तब एक प्रज्वलित दीप चढ़ाया गया, फिर एक शंख, एक रूमाल, कुछ पुष्प, एक चामर, और एक मोरपंख। अन्त में पुजारी ने ऊँचे स्वर में शंख बजाया और आरती का विधान समाप्त हुआ।

• • •

जब अभय डेढ़ वर्ष के थे, तब वे टायफायड से बीमार पड़ गये। परिवार के डॉक्टर बोस ने मुर्गी का सूप देने को कहा।

"नहीं," गौर मोहन ने विरोध किया, "मैं इसे नहीं देने दूँगा।"

"देना है, नहीं तो वह मर जायेगा।"

"किन्तु हम मांस-भक्षी नहीं हैं," गौर मोहन ने तर्क किया। "हमारे रसोई-घर में मुर्गी नहीं पकाई जा सकती।"

"चिन्ता न करें," डॉ. बोस ने कहा। "मैं इसे अपने घर में तैयार करूँगा और एक जार (मर्तवान) में लाऊँगा। आप केवल..."

गौर मोहन ने यह कहते हुए स्वीकार कर लिया, "यदि यह मेरे बेटे के जीवन के लिए आवश्यक हो।" अस्तु, डॉक्टर मुर्गी का सूप ले आये और वह अभय को दिया गया। अभय को तुरन्त उल्टी होने लगी।

डॉक्टर ने स्वीकार किया, "जाने दीजिए, यह ठीक नहीं।" तब गौर मोहन ने मुर्गी का सूप बाहर फेंक दिया और अभय मांस खाये बिना ही टायफायड से धीरे धीरे ठीक होने लगे।

• • •

अभय की नानी के घर की छत पर फूलों का एक छोटा-सा उद्यान था, घास थी और कुछ पेड़ थे। अन्य नाती-पोतों के साथ दो वर्ष की आयु के अभय को इन पौधों को हजारे से पानी देने में बड़ा आनन्द आता। किन्तु उनकी विशेष प्रवृत्ति इन पौधों के बीच अकेले बैठने की थी। वे एक बढ़िया झाड़ी खोज लेते और वहाँ अपने बैठने का स्थान बना लेते।

• • •

एक दिन जब अभय तीन साल के थे, वे एक घातक अग्निकांड से बाल-बाल बच गये। वे अपने घर के सामने दियासलाई की तीलियों से खेल रहे थे कि उनके कपड़े में आग लग गई। अचानक एक आदमी वहाँ पहुँच गया और उसने आग बुझा दी। अभय बच गये, यद्यपि उनके पैर पर एक दाग रह गया।

• • •

सन् १९०० ई. में जब अभय चार वर्ष के थे, कलकत्ता में बड़े जोर का प्लेग फैला। दर्जनों व्यक्ति हर दिन मरने लगे और हजारों ने शहर छोड़ दिया। जब प्लेग रोकने का कोई उपाय नहीं रह गया, तब एक बाबाजी ने सारे कलकत्ता में हरे-कृष्ण संकीर्तन का आयोजन किया। धर्म का विचार न कर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी उसमें सम्मिलित हुए और दल बनाकर वे गली-गली और द्वार-द्वार—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—गाते हुए घूमते रहे। यह दल गौर मोहन के घर १५१, हरीसन रोड, पहुँचा और गौर मोहन ने उत्कण्ठापूर्वक उसका स्वागत किया। यद्यपि तब अभय छोटे बच्चे थे और उनका सिर मुश्किल से संकीर्तनियों के घुटनों तक पहुँचता था, फिर भी वे उनके नाच-गान में शामिल हो गये। उसके कुछ समय बाद ही प्लेग शान्त हो गया।

• • •

गौर मोहन विशुद्ध वैष्णव थे और उन्होंने अपने पुत्र का पालन-पोषण कृष्णभावनामृत के लिए किया। उनके अपने माता-पिता भी वैष्णव थे, इसलिए गौर मोहन ने कभी मांस, मछली, अंडा, चाय या काफी का स्पर्श नहीं किया था। उनका रंग गोरा था और स्वभाव से वे गम्भीर थे। रात में वे अपनी कपड़े की दुकान बन्द करते, तो उसके बीच फर्श पर भात का एक कटोरा रख देते, ताकि चूहे उसे खाकर सन्तुष्ट हो जायें और भूख के कारण वे कपड़े न कुतरें; फिर वे घर लौटते। घर पर वे *चैतन्य-चरितामृत* और वैष्णव बंगालियों के मुख्य धर्मग्रंथ *श्रीमद्‌भागवतम्* का पाठ करते, मंत्रोच्चार के साथ माला जपते और भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह की पूजा करते। वे कोमल स्वभाव और पुत्र-वत्सल थे और अभय को कभी दंड नहीं देते थे। जब कभी विवश होकर अभय को उन्हें समझाना होता, तो पहले वे क्षमा-याचना करते थे: "तुम मेरे पुत्र हो, इसलिए मेरा तुम्हें समझाना आवश्यक है। यह मेरा कर्तव्य है। चैतन्य महाप्रभु के पिताजी भी उन्हें ताड़ना देते थे। इसलिए बुरा न मानना।"

श्रील प्रभुपाद : *मेरे पिताजी की आमदनी २५० रूपए से अधिक नहीं थी, किन्तु*

अभाव का कोई प्रश्न नहीं था। आम के मौसम में जब हम बच्चे थे, हम खेलते हुए घर में दौड़ते-फिरते और इस दौड़-भाग में हम आम झपट लेते। दिन भर हम आम खाते रहते। हमें यह सोचने की जरूरत न होती, "क्या मैं एक आम ले सकता हूँ।" पिताजी बराबर हमारे लिए सदैव भोजन की व्यवस्था करते। तब आम एक रुपया दर्जन के हिसाब से बिकते थे।

जीवन सादा था, किन्तु सब चीजें पर्याप्त थीं। हम मध्यम वर्ग के थे, किन्तु हर दिन हमारे यहाँ चार-पाँच मेहमान आते रहते। मेरे पिताजी को चार बेटियों का ब्याह करना पड़ा, लेकिन उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। यह ठीक है कि जीवन बहुत भोग-विलासपूर्ण नहीं था, किन्तु खाने, पहनने या रहने की कोई कठिनाई नहीं थी। प्रतिदिन ढाई किलो दूध आता था। पिताजी फुटकर खरीदना पसन्द नहीं करते थे, अतः साल-भर के लिए कोयल गाड़ी के हिसाब से खरीद लेते थे।

हम सुखी थे—ऐसा नहीं था कि हमारे पास मोटरकार नहीं थी, इसलिए हम दुखी हों। मेरे पिताजी कहा करते थे—"भगवान् के दस हाथ हैं। यदि वे तुमसे कोई वस्तु छीन लेना चाहते हों, तो दो हाथों से तुम कितना विरोध कर सकते हो? और यदि वे तुम्हें दस हाथों से देना चाहते हों तो दो हाथों में तुम कितना ग्रहण कर सकते हो?"

मेरे पिताजी कुछ देर से उठते थे, सात या आठ बजे के आस-पास। तब स्नान के बाद वे सामान खरीदने बाजार चले जाते थे। उसके बाद दस बजे से तीसरे पहर के एक बजे तक वे पूजा करते। तब वे दोपहर का भोजन करते और व्यवसाय के लिए निकल जाते। दुकान में वे एक घंटा विश्राम करते। दुकान से वे रात के दस बजे घर वापस आते और पूजा में लग जाते। सचमुच, उनका मुख्य व्यवसाय पूजा था। जीवन-यापन के लिए वे कुछ धंधा करते थे, परन्तु उनका मुख्य व्यवसाय पूजा ही था। हम सोते होते और पिताजी आरती करते रहते। घंटी की टन-टन सुनकर हम जग जाते और देखते कि पिताजी कृष्ण को नमन कर रहे हैं।

गौर मोहन की अभिलाषा अपने पुत्र को वैष्णव बनाने की थी। वे चाहते थे कि अभय राधारानी के सेवक बनें, *भागवतम्* के प्रचारक बनें और मृदंग के भक्तिपूर्ण वादन की कला सीखें। उनके घर पर साधु-संत नित्य आते और वे उनसे हमेशा यही प्रार्थना करते, "कृपा करके मेरे पुत्र को आशीर्वाद दीजिए कि राधारानी उन पर प्रसन्न हों और उसे अपने वरदान का पात्र बनाएँ।"

एक दूसरे के साथ का आनन्द लेते हुए पिता-पुत्र दस मील तक पैदल चले जाते और इस प्रकार ट्राम का पाँच पैसा भाड़ा बचा लेते। समुद्र-तट पर वे एक योगी का दर्शन करते जो एक ही स्थान पर वर्षों से बिना हिले-डुले बैठा रहता था। एक दिन वहाँ योगी का

लड़का बैठा था और उसके चारों ओर लोग इकट्ठे हो गये थे। लड़का अपने पिता के स्थान को ग्रहण किये था। गौर मोहन ने योगियों को कुछ दक्षिणा दी और अपने पुत्र के लिए आशीर्वाद माँगा।

जब अभय की माँ ने कहा कि वे चाहती हैं कि उनका पुत्र बड़ा होने पर अंग्रेजी वकील बने (जिसका तात्पर्य था कि अध्ययन के लिए उसे लंदन जाना होगा) तो मल्लिक परिवार के एक "चाचा" को यह विचार अच्छा लगा। लेकिन गौर मोहन को यह सुनना भी पसन्द नहीं था। वे सोचते, यदि अभय इंगलैंड गया, तो वह योरोपीय वेश-भूषा और रंग-ढंग से प्रभावित हो जायेगा। "वह शराब पीता और औरतों के पीछे भागना सीख जायेगा," गौर मोहन ने आपत्ति की, "मुझे उसकी कमाई नहीं चाहिए।"

अभय के बचपन से ही गौर मोहन ने अपनी योजना लागू कर दी थी। उन्होंने एक पेशेवर मृदंगवादक को रखा था, जो अभय को कीर्तन की संगत वाली मानक तालें सिखाता था। रजनी को इसमें सन्देह था, "ऐसे छोटे बच्चे को मृदंग सिखाने से क्या लाभ है? यह जरूरी नहीं है।" लेकिन गौर मोहन एक ऐसे पुत्र का स्वप्न देखते थे, जो भजन गाते, मृदंग बजाते और *श्रीमद्भागवतम्* पर प्रवचन करते बड़ा होगा।

जब अभय मृदंग बजाने बैठते, तो अपने दाहिने और बाएँ बाजुओं को पूरी तरह फैलाने पर भी उनके छोटे-छोटे हाथ ढोलक के केवल सिरों तक ही पहुँच पाते। शिक्षक की आज्ञा का अनुकरण करते हुए वे दाहिनी कलाई से हाथ भर ठेका देते और अंगुलियों से ऊँचा स्वर उत्पन्न करते—ती नी ती नी ता—और तब ढोलक के बाएँ सिरे पर खुला बायाँ हाथ मारते—बूम बूम। अभ्यास और बड़े होने के साथ वे धीरे धीरे खास-खास लय-ताल बजाना सीखने लगे और गौर मोहन उन्हें देखकर प्रसन्न होते।

• • •

अभय अपने माँ-बाप की सर्वमान्य प्रिय संतान थे। बचपन के मोती, नन्दूलाल, नन्दू, कोचा नामों के अतिरिक्त उनकी दादी उन्हें कचौरी-मुखी नाम से भी पुकारा करती थीं, क्योंकि उन्हें कचौरियाँ बहुत पसन्द थीं। उनकी दादी और माँ दोनों उन्हें कचौरियाँ दिया करती थीं, जिन्हें वे अपने छोटे कुर्ते की बहुत सारी जेबों में रखते रहते थे। भीड़-भाड़ भरी सड़क की पटरी पर खोमचे वालों को कचौरियाँ पकाते देखना उन्हें पसन्द था और वे खोमचे वालों और पड़ोसियों से कचौरियाँ तब तक लेते जाते, जब तक कि उनके कुर्ते के भीतर और बाहर की सभी जेबें न भर जातीं।

कभी-कभी जब अभय माँग करते कि उनके लिए उनकी माँ कचौरियाँ बनाएं तो उनकी माँ मना कर देती थीं। एक बार तो उन्होंने अभय को बिस्तर में सुला दिया। जब

गौर मोहन घर आये और पूछा कि, "अभय कहाँ है?" तो रजनी ने बताया कि वह कचौरियों के लिए किस तरह जिद कर रहा था और उन्होंने उनके बिना ही उसे सुला दिया था। पिता ने कहा, "नहीं, हमें उसके लिए कचौरियाँ बनानी चाहिए।" उन्होंने अभय को जगाया और स्वयं ही उनके लिए पूरियाँ-कचौरियाँ बनाईं। गौर मोहन अभय के प्रति सदा उदार थे और इसका ध्यान रखते थे कि उनका पुत्र जो कुछ चाहे वह उसे मिल जाये। जब गौर मोहन रात को घर लौटते, तो उनकी आदत थोड़ी मूढ़ी या लाई खाने की थी। अभय भी कभी-कभी उनके साथ बैठकर मूढ़ी खाते।

एक बार गौर मोहन ने अभय के लिए इंगलैंड से आयातित एक जोड़ा जूता छह रूपए में खरीदा और हर वर्ष वे काश्मीर आने जाने वाले एक मित्र के माध्यम से अपने पुत्र के लिए हाथ से सिले सुन्दर किनारे वाली एक काश्मीरी शाल मँगाकर उसे भेंट करते थे।

एक दिन अभय ने बाजार में खिलौने की बन्दूक देखी, जिसे वे माँगने लगे। उनके पिताजी ने मनाकर दिया, और अभय रोने लगे। "अच्छा, अच्छा," गौर मोहन बोले, और उन्होंने बन्दूक खरीद दी। तब अभय ने दूसरी बन्दूक की माँग की। "एक तो तुम्हारे पास है," पिता ने कहा, "दूसरी क्यों चाहते हो?"

"हर हाथ के लिए एक चाहिए," अभय बोले; वे रो पड़े और सड़क में पैर पटकते हुए लेट गये। जब गौर मोहन दूसरी बन्दूक खरीदने को राजी हुए, तब अभय शान्त हो गये।

• • •

अभय के जन्म के समय उनकी माँ रजनी तीस वर्ष की थीं। अभय के पिता की तरह उनकी माता भी दीर्घ-परम्परा वाले एक गौड़ीय वैष्णव परिवार से थीं। पति की अपेक्षा उनका रंग साँवला था और जहाँ पति शान्त स्वभाव के थे, वे शीघ्र आवेश में आ जाती थीं। अभय ने पाया कि उनके माता-पिता का जीवन शान्तिपूर्ण था; घर में कोई दांपत्य कलह या जटिल असंतोष नहीं था। रजनी पतिव्रता और धार्मिक विचारों की थीं, परम्परागत वैदिक अर्थ में एक आदर्श पत्नी थीं, जिनका जीवन पति और बच्चों की देख-भाल को अर्पित था। अभय देखते कि उनकी माता अपनी प्रार्थनाओं, मनौतियों और धार्मिक कृत्यों द्वारा सदैव यही सहज एवं भावुक प्रयत्न करतीं कि उनके पुत्र का जीवन सुरक्षित रहे। वे जब कभी खेलने के लिए भी बाहर जाते, तो उनकी माँ उन्हें ठीक से कपड़े पहनातीं और अँगुली में थूक लेकर उनके माथे पर लगातीं। अभय की समझ में इसका महत्त्व कभी नहीं आया, किन्तु चूँकि वे उनकी माता थीं, अत: जब वे यह सब करती रहतीं तो अभय "मालिक की बगल में कुत्ते की भाँति" विनम्रतापूर्वक खड़े रहते।

गौर मोहन की भाँति ही रजनी अभय को बहुत प्यार करती थीं। किन्तु जहाँ उनके पति पुत्र के प्रति अपना प्यार अपनी उदारता और उसकी आध्यात्मिक सफलता की योजनाओं द्वारा अभिव्यक्त करते, वहाँ वे अभय को खतरों, रोगों और मृत्यु से बचाने के लिए अपने प्रयत्नों से करतीं। एक बार उन्होंने अपने स्तन का खून एक देवता को इस प्रार्थना के साथ चढ़ाया कि वह अभय की हर खतरों से रक्षा करे।

अभय के जन्म पर उनकी माँ ने तब तक बाएँ हाथ से खाने का व्रत लिया, जब तक कि अभय उसे देखकर यह न कहे कि माँ तू गलत हाथ से क्यों खा रही है। एक दिन जब अभय ने सचमुच यह प्रश्न किया, तब माँ ने वैसा करना तुरन्त बन्द कर दिया। यह भी अभय के दीर्घ जीवी होने का एक विधान था, क्योंकि उनकी माँ का विचार था कि उनके व्रत के बल पर अभय सुरक्षित बढ़ता जायेगा, कम से कम तब तक, जब तक कि वह उनके व्रत के विषय में न पूछे। यदि अभय ने प्रश्न न किया होता तो वे अपने दाहिने हाथ से कभी न खातीं और उनके विश्वास के अनुसार, उनके व्रत से सुरक्षित अभय का जीवन चलता रहता।

अभय की सुरक्षा के लिए माँ ने उनके पैर में लोहे का कड़ा पहना दिया। उनके साथियों ने उसके बारे में पूछा, तो अभय का ध्यान उस पर गया; वे आत्म-चेतना के कारण माँ के पास गये और बोले, "यह कड़ा निकाल दो।" जब माँ ने कहा, "इसे मैं बाद में निकालूंगी," तो अभय रोने लगे, "अभी निकालो, अभी!" एक बार अभय तरबूज का एक बीज निगल गये। उनके मित्रों ने कहा कि यह बढ़कर उनके पेट में तरबूज बन जायेगा। वे दौड़कर माँ के पास पहुँचे। माँ ने उन्हें धीरज दिलाया कि चिन्ता की कोई बात नहीं; वे एक मंत्र द्वारा उनकी रक्षा करेंगी।

श्रील प्रभुपाद : *यशोदा माँ दिन भर के संकटों से कृष्ण की रक्षा करने के लिए हर सवेरे मंत्र-पाठ करती थीं। जब कृष्ण किसी राक्षस का वध करते, तो वे सोचती थीं कि यह उनके मंत्र-पाठ का फल है। मेरी माँ भी मेरे लिए ऐसा ही करतीं।*

अभय की माँ उन्हें प्रायः गंगाजी ले जातीं और उन्हें स्वयं नहलातीं। वे उन्हें हारलिक्स नामक पूरक आहार भी देतीं। जब उन्हें पेचिश हो जाती, तो माँ गरम पूरियों और भुने हुए लवण-मिश्रित बैगन से उनका उपचार करतीं, यद्यपि बीमार होने पर अभय कभी-कभी दवा लेने से इनकार करके अपनी हठ का प्रदर्शन करते थे। परन्तु जिस प्रकार वे हठी थे, उसी प्रकार उनकी माँ भी दृढ़-निश्चयी थीं और वे उनके मुख में दवा बलात् डालतीं, यद्यपि ऐसा करने में उन्हें पकड़ने के लिए कभी कभी तीन-तीन सहायकों की जरूरत पड़ती।

श्रील प्रभुपाद : *जब मैं बालक था, मैं बहुत शरारती था। मैं कोई भी चीज तोड़ देता।*

जब मैं क्रोधित होता, तो मैं शीशे की गुड़गुड़ी तोड़ देता, जो मेरे पिताजी अतिथियों के लिए रखते थे। एक बार जब माताजी मुझे स्नान कराने का प्रयास कर रही थीं, और मैं मना कर रहा था, मैंने अपना सिर जमीन पर पटक दिया और उससे खून बह निकला। सब दौड़ते हुए आ गये और कहने लगे, "आप क्या कर रही हैं? आप तो बच्चे को मार डालेंगी।"

जब माँ अपने गर्भों के सातवें और नवें महीने में *शाध-होत्र* करतीं, उस समय अभय उपस्थित रहते। सद्य:स्नात वे नये परिधान में अपने बच्चों के साथ बैठतीं और इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन का आनन्द लेतीं। उधर उनके पति स्थानीय ब्राह्मणों को, जो माँ और आने वाले शिशु की स्वच्छता-शुचिता के लिए मंत्र पढ़ते थे, दान-दक्षिणा देते।

अभय अपनी माँ पर पूर्णत: निर्भर थे। कभी-कभी वे उन्हें कमीज उल्टा पहना देतीं और अभय उसे बिना कुछ कहे ज्यों की त्यों स्वीकार कर लेते। यद्यपि वे कभी कभी हठी बन जाते, फिर भी अपनी माँ के मार्ग-दर्शन और पुनराश्वासन की उन्हें सदा जरूरत रहती। जब उन्हें शौचालय जाना होता, तो वे माँ की साड़ी पकड़कर उनके पास ऊपर-नीचे कूदने-फांदने लगते और कहते, "पेशाब, माँ, पेशाब।"

"तो तुम्हें रोक कौन रहा है?" वे कहतीं। "हाँ, तुम जा सकते हो।" केवल तब, उनकी अनुमति पाने पर ही वे जाते।

कभी-कभी निर्भरता-जनित घनिष्ठता में उनकी माँ उनकी विरोधी बन जातीं। एक बार जब उनका दूध का दाँत टूट गया और माँ की सलाह मानकर अभय ने रात में उसे तकिये के नीचे रख दिया, तो दाँत गायब हो गया और उसके स्थान पर कुछ पैसे मिले। अभय ने पैसे माँ को संभालकर रखने को दे दिए। दोनों के निरन्तर संसर्ग में एक बार जब उनकी माँ ने उनका विरोध किया, तो उन्होंने मांग की, "मैं अपने पैसे वापस चाहता हूँ। मैं घर से चला जाऊँगा। अब आप मेरे पैसे मुझे वापस दे दीजिए।"

जब माँ को जूड़ा बंधवाना होता, तो इसके लिए वे हरबार अपनी बेटियों से कहतीं। किन्तु जब अभय उपस्थित होते, तो वे स्वयं जूड़ा बाँधने का आग्रह करते और ऐसी बाधा पैदा करते कि बेटियाँ उनसे हार मान जातीं। एक बार महिलाओं की प्रथा का अनुकरण करते हुए, जो पर्वादि के अवसरों पर अपने तलवे रंगती हैं, अभय ने अपने पैरों के तलवों को लाल रंग से रंग डाला। उनकी माँ ने मना करना चाहा, यह कहते हुए कि बच्चे ऐसा नहीं करते। लेकिन अभय ने आग्रह किया, "नहीं, मैं जरूर करूँगा।"

• • •

अभय स्कूल जाना नहीं चाहते थे। वे सोचते, "मैं स्कूल क्यों जाऊँ? मैं दिन-भर

खेलूँगा।" जब माँ ने गौर मोहन से शिकायत की, तो इस विश्वास के साथ कि पिताजी उन्हें लाड़-प्यार करेंगे, अभय ने कहा, "नहीं, मैं कल स्कूल जाऊँगा।"

"ठीक है, वह कल स्कूल जायेगा," गौर मोहन ने कहा, "यह बहुत अच्छा है।" लेकिन दूसरे दिन सवेरे अभय ने बीमारी का बहाना किया और पिता ने उनकी बात मान ली।

रजनी को इस बात से बड़ी चिन्ता हुई कि बच्चा स्कूल नहीं जाना चाहता। उन्होंने उसे स्कूल ले जाने के लिए एक आदमी को चार रुपए वेतन पर रखा। वह आदमी, जिसका नाम दामोदर था, अभय की कमर में रस्सी बाँधकर—जो उस समय दंड देने का एक आम ढंग था—उन्हें स्कूल ले जाता और अध्यापक के सामने प्रस्तुत करता। जब अभय भाग जाने का प्रयत्न करते, तो दामोदर उन्हें पकड़ लेता और अपनी गोद में उठाकर ले जाता। इस प्रकार कई बार बलपूर्वक भेजे जाने पर अभय अपने आप स्कूल जाने लगे।

वे ध्यान लगाकर पढ़ने वाले और नेक चाल-व्यवहार के विद्यार्थी सिद्ध हुए, यद्यपि कभी-कभी वे शरारत कर बैठते थे। एक बार जब अध्यापक ने उनका कान उमेंठ दिया, अभय ने मिट्टी के तेल की लालटेन उठाकर जमीन पर पटक दी, जिससे अचानक आग लग गई।

• • •

उन दिनों कोई देहाती, चाहे वह निरक्षर ही क्यों न हो, *रामायण, महाभारत* या *भागवतम्* के श्लोक सुना सकता था। विशेषकर लोग गाँवों में शाम को एकत्र होते और इन धर्मग्रंथों का पाठ सुनते। इसी उद्देश्य से अभय के परिवार के लोग कभी कभी उनके मामा के घर, जो दस मील दूर था, जाते और वहाँ एकत्र होकर सब श्रीभगवान् की दिव्य लीलाओं की कथाएँ सुनते। उन कथाओं को दुहराते और उनके बारे में चर्चा करते हुए वे घर लौटते और *रामायण, महाभारत, भागवतम्* का स्वप्न देखते हुए सो जाते।

तीसरे पहर के विश्राम और स्नान के बाद अभय प्राय: एक पड़ोसी के घर चले जाते और *महाभारत* के श्याम-श्वेत चित्रों का अवलोकन करते। उनकी दादी उनको बाँग्ला-महाभारत से नित्य पाठ करने को कहतीं। इस प्रकार चित्रों को देख-देखकर और दादी के साथ पाठ करके अभय ने *महाभारत* को आत्मसात कर लिया।

• • •

अभय की बाल-क्रीड़ा में उनकी छोटी बहन भवतरिणी प्राय: उनका साथ देती। वे साथ-साथ मल्लिक के मन्दिर में राधा-गोविन्द के अर्चाविग्रहों का दर्शन करने जाते।

अपनी बाल-क्रीड़ा में जब कभी उन्हें बाधा होती, तब सहायता के लिए वे भगवान् से प्रार्थना करते। पतंग उड़ाने के लिए भागते हुए वे कहते, "कृष्ण भगवान्, कृपा करके पतंग उड़ाने में हमारी सहायता कीजिए।"

अभय के खिलौनों में दो बन्दूकें शामिल थीं, चाभी ऐंठने से चलने वाली एक कार थी; एक गाय थी, जिसमें लगे रबर-बल्ब को दबाने से वह कूदने लगती और एक कुत्ता था, जिसमें लगे यंत्र के बल से वह नाचने लगता। कुत्ता डॉ. बोस से प्राप्त हुआ था, जो पारिवारिक चिकित्सक थे और जिन्होंने अभय की बगल में एक मामूली घाव का उपचार करते समय उसे उन्हें दिया था। कभी कभी अभय डॉक्टर होने का नाटक करते और अपने मित्रों को "दवा" देते जो धूलि के अतिरिक्त कुछ न होती।

• • •

कलकत्ता में प्रतिवर्ष होने वाले जगन्नाथजी के रथयात्रा समारोहों के पीछे अभय मुग्ध थे। मल्लिक की कलकत्ता रथयात्रा सबसे विशाल होती, जिसमें तीन अलग-अलग रथों में जगन्नाथ जी, बलदेव जी और सुभद्रा जी के श्रीविग्रह ले जाये जाते। राधा-गोविन्द मन्दिर से आरम्भ करके रथ हरीसन रोड पर थोड़ी दूर जाते और फिर वापस आ जाते। मल्लिक लोग उस दिन जनता को भारी मात्रा में जगन्नाथ जी का प्रसाद वितरण करते।

रथयात्रा भारत के सभी नगरों में निकाली जाती थी; परन्तु मूल और विशाल रथयात्रा, जिसमें हर वर्ष लाखों तीर्थ-यात्री सम्मिलित होते, कलकत्ता से दक्षिण की ओर तीन सौ मील की दूरी पर जगन्नाथ पुरी में होती थी। भगवान् कृष्ण की एक शाश्वत लीला की स्मृति में पैतालीस-फुट ऊँचे तीन काठ के रथ जनसमूह द्वारा दो मील के यात्रा-पथ पर शताब्दियों से खींचे जाते रहे थे। अभय ने सुन रखा था कि चार सौ वर्ष पूर्व किस प्रकार स्वयं महाप्रभु चैतन्य रथयात्रा समारोह में भावविभोर होकर, नाचते थे और 'हरे कृष्ण' कीर्तन का नेतृत्व करते थे। अभय कभी-कभी रेलवे टाइम टेबल देखते या वृन्दावन और पुरी का किराया पूछते। वे यही सोचते रहते कि किस तरह उनके पास किराए के पैसे इकट्ठे हों और वे इन स्थानों को जा सकें।

अभय की इच्छा थी कि उनका अपना रथ हो और वे अपनी रथयात्रा निकाल सकें। सहायता के लिए उन्होंने अपने पिताजी से कहा। गौर मोहन राजी हो गये, लेकिन इसमें कठिनाइयाँ थीं। जब वे अभय को कई बढ़इयों की दुकानों पर ले गये, तो उन्होंने पाया कि रथ बनवाना उनके सामर्थ्य की बात नहीं। जब वे घर लौटने लगे, तो अभय रोने लगे और एक वृद्ध बंगाली महिला उनके पास गई और उसने पूछा कि बात क्या है। गौर मोहन ने बताया कि बच्चा रथयात्रा के लिए रथ चाहता है, लेकिन उसे बनवाना उनके लिए सम्भव

नहीं है। "ओह, मेरे पास एक रथ है," महिला ने कहा और उन्हें अपने घर आमन्त्रित करके उसने रथ दिखाया। रथ पुराना लगता था, लेकिन फिर भी काम-चलाऊ था और उसका आकार भी ठीक था, लगभग तीन फुट ऊँचा। गौर मोहन ने उसे खरीद लिया और उसकी मरम्मत करा के उसे सजाने में सहायता की। पिता-पुत्र ने मिलकर उस पर सहारे के लिए सोलह खंभे बनाए और उनके ऊपर वितान तान दिया, जो पुरी के बड़े रथों पर लगे वितानों से लगभग मिलता हुआ था। रथ के आगे उन्होंने परम्परागत काठ का घोड़ा और उसका चालक भी लगा दिया। अभय का आग्रह था कि रथ असली लगना चाहिए। गौर मोहन रंग ले आये और अभय ने रथ को पुरी के मूल रथों का अनुकरण करते हुए स्वयं पेण्ट किया। उनमें बड़ा उत्साह था और समारोह के विविध पक्षों की व्यवस्था उन्होंने बड़ी लगन से की। लेकिन जब उन्होंने एक पुस्तक में दिए गये चित्रों और विधियों को क्रियान्वित करते हुए यात्रा के लिए आतिशबाजी करने का प्रयत्न किया तो रजनी ने मना कर दिया।

अभय ने अपने साथियों से सहायता ली, विशेषकर अपनी बहन भवतरिणी से, और वे उनके स्वाभाविक नेता बन गये। उनकी बाल-क्रीड़ा से प्रसन्न पड़ोस की वृद्ध महिलाएँ उनकी प्रार्थना पर विशेष व्यंजन बनाने को राजी हो गईं। ताकि वे अपने रथयात्रा समारोह में प्रसाद बाँट सकें।

पुरी की रथयात्रा की तरह, अभय की रथयात्रा भी लगातार आठ दिन चलती। उनके परिवार के लोग जमा होते, और पड़ोस के बच्चे यात्रा में शामिल होते, रथ खींचते, ढोल और करताल बजाते तथा कीर्तन करते। ग्रीष्म की गरमी में बिना कुर्ता-कमीज के, केवल धोती पहने, अभय हरे कृष्ण और समयोपयुक्त बंगाली भजन '*की कर राइ कमलिनी*' गाने में बच्चों का मार्ग-दर्शन करते।

आप क्या कर रही हैं, श्रीमती राधारानी ?
कृपया बाहर आइये और देखिए।
वे चुरा रहे हैं आपके अतिप्रिय कोष-
कृष्ण को, श्याम रत्न को।
काश युवा राधारानी जान पातीं!
कि युवक कृष्ण,
उनके हृदय का रत्न
अब उन्हें त्याग रहा है।

अभय ने बड़ों के धार्मिक उत्सवों में जो कुछ देखा था, उसका उन्होंने अनुकरण किया। उन्होंने अर्चाविग्रहों को वस्त्राभूषणों से उसी भाँति सजाया; उन्हें नैवेद्य अर्पण

किया; घी के दीपक और अगरबत्ती से आरती की और साष्टांग प्रणाम किया। हरीसन रोड से जुलूस राधा-गोविन्द मन्दिर के आंगन में गोल सड़क पर आया और अर्चाविग्रहों के सामने थोड़ी देर के लिए रुक गया। यह सब तमाशा देखकर गौर मोहन के मित्र उनके पास गये और बोले, "आपने हमें आमंत्रित क्यों नहीं किया ? यह तो आप एक बड़ा उत्सव कर रहें है और आप हम लोगों को आमंत्रित नहीं कर रहे है; यह क्या है ?"

अभय के पिता ने उत्तर दिया, "यह सब केवल बच्चों का खेल है।"

मित्रों ने व्यंग्य किया, "हाँ, यह सब केवल बच्चों का खेल है! ऐसा कहकर आप हम लोगों को उसके आनन्द से वंचित कर रहे हैं ?"

अभय भावविभोर होकर रथयात्रा के जुलूस में जुटे रहे; उधर गौर मोहन लगातार आठ दिन धन व्यय करते रहे और रजनी जगन्नाथ जी पर चढ़ाने के लिए विविध व्यंजन और फूल-मालाएँ तैयार करती रहीं। यद्यपि अभय ने जो कुछ किया वह केवल अनुकरण था, लेकिन रथयात्रा निकालने के पीछे उनकी प्रेरणा और अविचल स्फूर्ति वास्तविक और सच्ची थी। उनकी स्वतः-प्रेरणा से बच्चों का यह उत्सव आठ दिन तक चलता रहा। उत्तरोत्तर हर वर्ष नया उत्सव आता और अभय उसी उत्साह से उसे मनाते।

• • •

जब अभय छह वर्ष के हुए, तो उन्होंने अपने पिताजी से पूजा के लिए अपने लिए अलग अर्चाविग्रह की माँग की। बचपन से उन्होंने घर में पिताजी को पूजा करते देखा था। राधा-गोविन्द की नियमित आराधना को देखकर वे सोचते, "इस तरह कृष्ण की पूजा करने योग्य मैं कब होऊँगा ?" अभय की प्रार्थना पर उनके पिता ने राधा-कृष्ण के श्रीविग्रहों की एक छोटी-सी जोड़ी खरीदी और अभय को दे दी। तब से अभय जो कुछ खाते, उसे वे पहले राधा और कृष्ण को अर्पण करते। अपने पिता और राधा-गोविन्द के पुजारियों का अनुकरण करते हुए, वे अर्चाविग्रहों को घी का दीपक चढ़ाते और रात में उन्हें सुला देते।

अभय और उनकी बहन भवतरिणी राधा-कृष्ण के छोटे-से अर्चाविग्रहों के पक्के भक्त बन गये। वे अपना अधिकतर समय उनको सँवारने में, उनकी आराधना करने में और यदा-कदा भजन गाने में बिताने लगे। उनकी बहिनें और भाई उन पर हँसते और उन्हें यह कहकर चिढ़ाते कि चूँकि पढ़ने-लिखने की अपेक्षा उनकी रुचि अर्चाविग्रह की पूजा में अधिक है, इसलिए वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहेंगे। लेकिन अभय जवाब देते कि हमें इसकी चिन्ता नहीं है।

• • •

एक बार एक पड़ोसी ने अभय की माता से पूछा, "आपके छोटे लड़के की आयु क्या है?" उन्होंने उत्तर दिया, "अभय सात साल का है।" अभय इस बात को रुचि-पूर्वक सुन रहे थे। उन्होंने अपनी आयु के विषय में किसी को बात करते पहले नहीं सुना था, लेकिन अब उन्हें पहली बार मालूम हुआ कि वे सात साल के हो गये हैं।

• • •

किंडरगार्टन में शिक्षा पाने के अतिरिक्त जहाँ अभय को पहले बलात् ले जाया गया था, वे पाँच से आठ साल की आयु तक घर पर ट्यूटर से भी पढ़ते रहे। वे बंगाली में पढ़ना सीख गये और संस्कृत सीखने लगे। उसके बाद सन् १९०४ ई. में जब अभय आठ साल के हो गये, उन्हें हरीसन रोड और सेन्ट्रल रोड के कोने पर स्थित, निकट के मुट्ठीलाल सील फ्री स्कूल में दाखिल कराया गया।

मुट्ठीलाल स्कूल लड़कों का स्कूल था, जिसकी स्थापना सन् १८४२ ई. में एक सम्पन्न सुवर्ण-वणिक वैष्णव ने की थी। स्कूल का भवन पत्थर का बना था, वह दो मंजिला था और उसके चारों ओर पत्थर की चहारदीवारी थी। उसके अध्यापक भारतीय थे और विद्यार्थी स्थानीय सुवर्ण-वणिक परिवारों के बंगाली थे। धोती और कुर्ता पहने हुए लड़के अपने माता-पिता को छोड़कर सवेरे अपने घरों से निकलते और हाथ में कुछ किताबें और टिफिन लिए हुए, वे छोटे-छोटे समूहों में चलते हुए स्कूल की ओर बढ़ते। स्कूल के अहाते में पहुँचकर वे एक साथ खेलते और बातें करते, जब तक कि घंटे की टन-टन उन्हें अपनी कक्षाओं में जाने को न बुलाती। बच्चे बड़े कमरों को पार करते हुए, सीढ़ियों से चढ़ते-उतरते, स्कूल की दूसरी मंजिल पर सामने के विस्तृत बरामदे में जा पहुँचते। तब उनके अध्यापक उन्हें लकड़ी की डेस्कों के पीछे बेंचों पर बैठाते, जहाँ गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और उनके अपने वैष्णव धर्म और संस्कृति में उन्हें शिक्षा दी जाती।

कक्षाएँ अनुशासित थीं और नियम-बद्ध रूप से चलती थीं। हर लम्बी बेंच पर चार बच्चे बैठते, चारों के लिए डेस्क एक थी, जिसमें चार दवातें बनी होती थीं। यदि कोई लड़का शरारत करता, तो उसके अध्यापक उसे "बेंच पर खड़े हो जाओ" का आदेश देते थे। बंगाली पुस्तक का नाम, जिसे बच्चे पढ़ते थे, "फोक टेल्स आफ बंगाल" था। वह परम्परागत बंगाली लोक-कथाओं का संग्रह थी,—ऐसी लोक-कथाओं का, जिन्हें दादी वहाँ के बच्चों को सुनाया करती थीं जैसे चुड़ैलों, भूतों, तांत्रिकों, वार्तालाप करने वाले पशुओं, सज्जन ब्राह्मणों (या कभी-कभी दुष्ट ब्राह्मणों) शूरवीर सैनिकों, चोरों, राजकुमारों, राजकुमारियों, आध्यात्मिक त्यागों, सद्गुणों धार्मिक विवाहों आदि की कथाएँ।

नित्य स्कूल जाने-आने में अभय और उनके मित्र कलकत्ता की सड़कों पर नियमित

चलने वालों को पहचानने लगे थे—और नहीं तो, अपने बचकाने दृष्टिकोण से। इनमें प्रायः घोड़ा-गाड़ियों में चलने वाले गोरे साहब थे; भाड़े की गाड़ियाँ चलाने वाले ड्राइवर थे, झाड़ू से सड़कें साफ करने वाले भंगी थे और यहाँ तक कि स्थानीय जेबकतरे और सड़क के मोड़ों पर खड़ी रहने वाली वेश्याएँ भी थीं।

जिस साल हरीसन रोड पर बिजली की ट्राम गाड़ियाँ चलाने के लिए लोहे की पटरियाँ बिछाई गईं, उसी साल अभय दस साल के हुए। वे श्रमिकों को पटरियाँ बिछाते हुए देखते रहते और जब उन्होंने पहली बार ट्रालीकार में लगी हुई छड़ को ऊपर के तार का स्पर्श करते हुए देखा, तो उन्हें अचंभा हुआ। उन्हें दिवास्वप्न आने लगे कि एक छड़ी लेकर वे सिर के ऊपर का तार स्वयं छू रहे हैं और बिजली के बल से भाग रहे हैं। यद्यपि बिजली कलकत्ता के लिए नई वस्तु थी और इसका प्रचलन अधिक नहीं था (और केवल सम्पन्न लोग ही अपने घरों में बिजली लगवा सकते थे), लेकिन बिजली की ट्राम के साथ सड़कों पर बिजली की नई बत्तियाँ जलने लगीं और पुरानी गैस-लाइट खत्म हो गई। अभय और उनके मित्र सड़कों पर घूमकर ऐसे खराब बल्बों की तलाश करते, जो बिजली के कर्मचारी सड़कों पर छोड़ जाते थे। जब अभय ने पहली बार अपना ग्रामोफोन बक्सा देखा, तो उन्होंने सोचा कि उसमें कोई बिजली का आदमी या भूत गा रहा है।

अभय को कलकत्ता की भीड़ से भरी सड़कों पर साइकल चलाना पसन्द था। यद्यपि स्कूल में फुटबाल-क्लब की स्थापना के बाद उन्होंने गोलकीपर बनाए जाने की प्रार्थना की थी, जिससे उन्हें दौड़ना न पड़े, किन्तु वे साइकल चलाने में बड़े तेज थे। उन्हें दक्षिण की ओर डैलहौजी स्क्वायर जाना बहुत पसन्द था, जहाँ बड़े-बड़े फौव्वारे हवा में जल की पिचकारियाँ छोड़ते रहते थे। यह स्थान राजभवन के निकट था, जहाँ वायसराय का निवास था, जिसमें अभय दरवाजों से अन्दर झांक सकते थे। साइकल से दक्षिण की ओर आगे बढ़ते हुए वे मैदान के खुले मेहराबों को पार करते, जो कलकत्ता का मुख्य सार्वजनिक पार्क था। उस पार्क में चौरंगी और अंग्रेजों की भव्य इमारतों और वृक्षों की ओर फैला हुआ हरी घास का सुन्दर चपटा मैदान था। पार्क में साइकल चलाने के लिए और भी रोमांचकारी स्थल थे, जैसे दौड़ का मैदान, फोर्ट विलियम और स्टेडियम। मैदान गंगा के तट पर था। (जिसका स्थानीय नाम हुगली है।) कभी-कभी अभय इसके किनारे-किनारे साइकल चलाते हुए घर लौटते। वहाँ उन्हें बहुत से नहाने के घाट दिखाई देते, जहाँ गंगा के अन्दर जाने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ बनी थीं और इन सीढ़ियों के ऊपर प्रायः मन्दिर स्थित थे। एक श्मशान भी था जहाँ मुर्दे जलाए जाते थे और अभय के घर के निकट ही पीपे का पुल था, जो नदी के पार हौड़ा शहर में जाता था।

• • •

बारह वर्ष की आयु होने पर अभय ने एक वृत्तिक गुरु से दीक्षा ली, किन्तु उन पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। गुरु ने उन्हें स्वयं अपने गुरु के बारे में बताया, जो एक महान् योगी थे और जिन्होंने एक बार उनसे पूछा था कि, "तुम क्या खाना चाहते हो?"

अभय के परिवार के गुरु ने उत्तर दिया था, "अफगानिस्तान के ताजे अनार।"

योगी बोले थे, "बहुत अच्छा, बगल के कमरे में जाओ।" और वहाँ उन्हें अनार के फलों की एक शाखा मिली थी। अनार इतने पके थे मानो पेड़ से अभी तोड़कर लाए गये हों। एक योगी, जो अभय के पिता के पास आये थे, कहने लगे कि वे एक बार अपने गुरु के पास बैठे थे और उनके शरीर का स्पर्श करते ही वे पल-मात्र में योग की शक्ति से द्वारका पहुँच गये थे।

बंगाल में निरन्तर बढ़ते तथाकथित साधुओं के बारे में गौर मोहन की राय अच्छी नहीं थी। इन साधुओं में भक्तिरहित, निर्विशेषवादी दार्शनिक, देवताओं के पूजक, गाँजा पीने वाले, भीख माँगने वाले सभी शामिल थे। लेकिन गौर मोहन इतने दानशील थे कि उनके घर का दरवाजा सभी मिथ्याचारियों के लिए खुला था। अभय देखते कि उनके पिता के अभ्यागत के रूप में बहुत से तथाकथित साधु और कुछ सच्चे संत-महात्मा भी भोजन के लिए प्रतिदिन घर में आते थे। उनके वार्तालाप और कार्यकलाप से अभय को बहुत सी बातें मालूम हुईं, जिनमें योगिक शक्तियाँ भी शामिल थीं। एक बार एक सर्कस में अभय और उनके पिता ने देखा कि एक योगी के हाथ-पैर बाँधकर उसे एक थैले में बन्द कर दिया गया। थैला सील करके एक बक्स में रखा गया, और बक्स में ताला लगाकर उसे भी सील कर दिया गया; फिर भी योगी बाहर निकल आया। लेकिन अभय ने इन चीजों को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितना वे पिता द्वारा सिखाए गये अपने भक्ति-परक कार्यकलापों, राधा-कृष्ण की उपासना और रथयात्रा के आयोजन को देते थे।

• • •

कलकत्ता में हिन्दू और मुसलमान आपस में शान्तिपूर्वक रहते थे और वे प्रायः एक दूसरे के सामाजिक और धार्मिक उत्सवों में सम्मिलित होते थे। उनमें आपसी मतभेद तो थे, लेकिन सामंजस्य बराबर बना रहता था। इसलिए जब उत्पात आरम्भ हुआ, तो अभय के परिवार को यह अंग्रेजों की राजनीतिक चाल लगी। जब पहला हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ, उस समय अभय की आयु लगभग तेरह साल की थी। उनकी समझ में ठीक तरह से नहीं आया कि यह क्या था, लेकिन उन्होंने किसी तरह अपने को उसके मध्य पाया।

श्रील प्रभुपाद : *हरीसन रोड पर हमारे चारों ओर मुसलमान थे। मल्लिक परिवार और*

हमारा परिवार सम्मानित परिवार थे, अन्यथा चारों ओर ऐसी आबादी थी, जिसे कस्बा और बस्ती कहते हैं। सो, दंगा शुरू हो गया, और उस समय मैं खेलने गया हुआ था। मुझे नहीं मालूम था कि मार्केट स्क्वायर में दंगा हो गया है। मैं घर लौट रहा था, तो मेरे एक स्कूली मित्र ने कहा, "अपने घर मत जाओ। उधर अब दंगा हो रहा है।"

हम मुसलमानों के बीच रहते थे और दोनों सम्प्रदाय आपस में लड़ रहे थे। लेकिन मैंने सोचा, हो सकता है यह दो गुंडों के बीच की लड़ाई-जैसी हो। एक बार मैंने एक गुंडे को दूसरे गुंडे द्वारा छुरा भोंकते हुए देखा था और मैंने जेबकतरों को भी देखा था। वे हमारे पड़ोसी थे। इसलिए मैंने सोचा, यह वैसा ही कुछ चल रहा होगा।

लेकिन जब मैं हरीसन रोड और हालीडे स्ट्रीट के क्रासिंग पर पहुँचा, तो मैंने एक दुकान लुटती हुई देखी। तब मैं केवल एक बच्चा था। मैंने सोचा, "यह क्या हो रहा है?" इस बीच घर में मेरे परिवार के लोग, मेरे पिताजी और माताजी सब घबराकर सोच रहे थे, "बच्चा घर नहीं लौटा है।" वे इतने घबरा गये कि वे सब घर से बाहर आ गये, इस व्यग्रता में कि "बच्चा कहाँ से आता होगा?"

ऐसी स्थिति में मैं क्या कर सकता था? जब मैंने दंगा होते देखा तो मैं अपने घर की ओर भागा। सामने एक मुसलमान था। वह मेरी हत्या करना चाहता था। अपना चाकू निकालकर वह वास्तव में मेरे पीछे दौड़ा। लेकिन किसी तरह, मैं निकल भागा और बच गया। अस्तु, जब मैं दौड़ता हुआ अपने दरवाजे के सामने पहुँचा, तो मेरे माँ-बाप की जान में जान आई।

अतः बिना कुछ कहे मैं अपने सोने के कमरे में गया। जाड़े की ऋतु थी। बिना कुछ बोले मैं लेट गया और रजाई से अपने को लपेट लिया। बाद में जब मैं उठा, तो मैंने पूछा, "क्या यह समाप्त हो गया, दंगा बन्द हो गया?"

• • •

जब अभय पन्द्रह साल के थे, तब उन्हें बेरीबेरी रोग हो गया और उनकी माँ को, जो स्वयं भी इस रोग से पीड़ित थीं, सूजन कम करने के लिए नित्य उनके पैरों में कैलशियम क्लोराइड पाउडर की मालिश करनी पड़ती थीं। अभय शीघ्र अच्छे हो गये और उनकी माँ भी, जिन्होंने अपना कोई भी काम बन्द नहीं किया था, अच्छी हो गईं।

किन्तु एक साल बाद ही छियालीस वर्ष की आयु में उनकी माँ का अचानक देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु से अभय के कोमल बचपन के दृश्यों पर अचानक पटाक्षेप हो गया। उनका प्यार भरा लालन-पालन, पुत्र की सुरक्षा के लिए उनकी प्रार्थनाएँ, मंत्र-जाप, खिलाना-पिलाना, पहराना-संवारना, कर्तव्य-प्रेरित डाँट-फटकार, सब समाप्त हो गया।

उनकी बहनों पर उनकी तुलना में माता की मृत्यु का अधिक प्रभाव हुआ। पिता से निश्चय ही अब उन्हें अधिक लाड़-प्यार मिलने लगा। वे सोलह साल के हो चुके थे। लेकिन अब उन्हें अपने बूते पर बड़े होकर संसार की जिम्मेदारियाँ सँभालने के लिए तैयार होना पड़ा।

उनके पिता उन्हें सांत्वना देते। वे अभय को शिक्षा देते कि संसार में किसी वस्तु के लिए दुखी नहीं होना चाहिए : आत्मा अमर है, और कृष्ण की इच्छा से हर चीज होती है। इसलिए उसे कृष्ण में विश्वास होना चाहिए और उन पर निर्भर रहना चाहिए। अभय इन बातों को सुनते और समझते थे।